गृहस्थ आश्रम में नारी

डा. मुकेश शर्मा

(सहायक प्रवक्ता),डी.ए.वी. कालेज फार गर्ल्ज,यमुनानगर, हरियाणा

शोधपत्र सार

प्राचीन भारत में मानव जीवन को व्यवस्थित करने के लिए चार आश्रमों की कल्पना की गयी थी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम मानव जीवन को उसकी आयु के आधार पर विभाजित कर व्यवस्थित करते थे। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारत में पुरुष–स्त्री में किसी प्रकार का भेदभाव नही होता था। स्त्रियाँ भी पुरुषों की भान्ति शिक्षा–दीक्षा प्राप्तकर चारों आश्रमों का लाभ प्राप्त करती थी। अनेक स्थलों पर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सम्मान प्रदान किया गया है। गृहस्थ आश्रम जो कि चारो आश्रमों में सर्वोत्तम कहा गया है, इसकी कल्पना बिना स्त्री के शशविषाणवत् निर्मूल है। गृहस्थ आश्रम में नारी एक होकर भी अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करती है। एक ओर तो वह रथचक्र की भान्ति गृहस्थ रूपी रथ को गतिमान रखती है तो दूसरी ओर प्रजोत्पादन से लेकर ज्येष्ठ जन सेवा के कठिन नियमों का पालन करती है। नारी को गृहस्थ–आश्रम में प्राप्त करके ही पुरुष का व्यक्तित्व सम्पूर्ण होता है तथा वह धर्मकृत्य सम्पादन का अधिकारी बनता है। सामाजिक दृष्टिकोण से भी गृहस्थ आश्रम में नारी की भूमिका प्रमुख होती है। गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का आधार है तथा गृहस्थ आश्रम बिना नारी के सम्भव नहीं है, इसी कारण से वैदिक हो एवं लौकिक ग्रन्थों में गृहस्थ आश्रम के सन्दर्भ में नारी की महिमा का वर्णन किया गया है।

विषयसूचक शब्द : गृहस्थ, आश्रम, वैदिक, साहित्य, भूमिका, नारी।

प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता अद्वितीया है। इसका उद्‌गम वैदिक काल से माना गया है। अद्यावधि पर्यन्त इसकी अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है। एकमात्र भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति ही ऐसी है जिसने परुषार्थ–चतुष्टय को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करके मानव जीवन को भी चार आश्रमों में विभक्त कर दिया, जिससे प्रत्येक प्राणी सुखपूर्वक इहलोक को त्यागपूर्वक भोग करते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर हो सके। मनुष्य का जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास नामक चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। विद्या अध्ययन हेतु ब्रह्मचर्य, धनार्जन तथा संतति उत्पत्ति हेतु गृहस्थ, गृहस्थ में रहकर त्यागपूर्वक उपभोग एवं समाज कल्याण हेतु वानप्रस्थ तथा पूर्णरूपेण जन कल्याण एवं आत्म कल्याण को समर्पित संन्यास आश्रम, इस प्रकार चार आश्रमों की व्यवस्था ऋषियों ने हमें प्रदान की। भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम अपनी बहुमुखी उपयोगिता के लिए प्रशंसा प्राप्त है। मनु महाराज कहते हैं–

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।

गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।

स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।

सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधर्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।[1]

जिस प्रकार समस्त जीव जन्तु अपने जीवन के लिए वायु पर आश्रित हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित है। गृहस्थ ज्ञान तथा अन्न से अन्य तीनो आश्रमों की सहायता करता है। अतः गृहस्थ तीनों आश्रमों की अपेक्षा ज्येष्ठ है। स्वर्ग तथा इहलोक में सुख चाहने वाले व्यक्ति को गृहस्थाश्रम का पालन करना चाहिए। ''धन्योगृहस्थाश्रम'' कहकर इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा शास्त्रों में की गई है। गृहस्थ आश्रम का आरम्भ ब्रह्मचर्य की पूर्णता पर होता है।

विवाह संस्कार की परिभाषा

विवाह संस्कार के पश्चात गृहस्थ आश्रम में गृहस्थी प्रवेश करता है। विवाह क्या है? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर मनुस्मृति के व्याख्याकार मेधातिथि जी कहते हैं–

''कः पुनरयं विवाहो नाम? उपायतः प्राप्तायाः कन्याया दारकरणार्थ।

संस्कारः सेति कर्त्तव्यताड्.गाः सप्तर्षिदर्शनपर्यन्तः पाणिग्रहण लक्षणः।''[2]

अन्यतम विधि से प्राप्त कन्या को पत्नी का स्तर प्रदान कराने के लिए वाग्दान प्रभृति सप्तर्षि दर्शन पर्यन्त जो संस्कार किया जाता है वह कृत्य कर्म विवाह इस नाम से कहा जाता है। इस प्रकार मनुस्मृति में विवाह की व्याख्या की गई है। प्रो. काणे के अनुसार विवाह एक संस्कार है जो संतान परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने तथा आत्मसंयम, आत्मोत्सर्ग एवं पारस्परिक सहयोग के द्वारा जीवन में अभ्युदय प्राप्ति हेतु स्त्री पुरुष मिथुन को एक सूत्र में बाँधता था।[3]

विवाह संस्कार के प्रकार

विवाह को आठ प्रकार से स्मृतिकारों ने स्वीकार किया है। याज्ञवल्वय स्मृति में कहा हैः–

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।

गान्धर्वो राक्षश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।[4]

इस प्रकार ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच नामक आठ प्रकार के विवाह याज्ञवल्क्य तथा मनुस्मृति में वर्णित हैं। इनमें से पैशाच, राक्षस, गान्धर्व तथा आसुर विवाह को स्मृतिकारों ने अप्रशस्त माना है तथा ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य को श्रेष्ठ माना है। विवाह संस्कार का अन्य नाम पाणि ग्रहण भी है। गृहस्थ आश्रम पाणिग्रहण यानि विवाह संस्कार के पश्चात प्रारम्भ होता है।

गृहस्थ आश्रम में नारी की भूमिका

पाणिग्रहण में पुरुष और स्त्री को विधिवत गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कराया जाता है। गृहस्थ आश्रम स्त्री के बिना अपूर्ण है।[5] पराशर जी का वचन है **''न गृहेण गृहस्थः स्याद् भार्यया कथ्यते गृही''**[6] अर्थात् पुरुष घर का स्वामी होने मात्र से गृहस्थ नही होता अपितु भार्यायुक्त होने पर ही गृहस्थ कहलाता है। गृहस्थ आश्रम बिना नारी के हो ही नहीं सकता निम्न अनेक तथ्य ऐसे हैं जो यह स्पष्ट करते हैं।

पूर्ण व्यक्तित्व –भारत में अर्द्धनारीश्वर की धारणा प्राचीन काल से है। शिव में भी इकार शक्ति का प्रतीक है, इकार के बिना शिव भी शव हो जाता है जिस प्रकार प्रकृति से पुरूष परिपूर्ण होता है उसी प्रकार स्त्री से नर परिपूर्ण होता है। स्कन्द पुराण का वचन है **''नरो हि गृहिणी हीनो अर्द्धदेह इति स्मृतः।**[7]अर्थात् नर नारी के अभाव में केवल अर्द्धदेह ही है। एक नर का व्यक्तित्व तभी पूर्ण होता है जब वह नारीयुक्त हो अर्थात गृहस्थी हो।

ऋणमोचन– गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य ऋण मोचन भी है। एक मनुष्य जन्म ग्रहण करते ही ऋणत्रय से युक्त हो जाता है। देव, पितृ और मनुष्य का ऋण उस पर होता है। ऋणमुक्ति हेतु पाणिग्रहण अनिवार्य है जो कि बिना नारी के सम्पन्न नहीं हो सकता है। ऋणमोचन न किया जाए तो व्यक्ति का पतन ही होता है।[8]

धर्मकृत्य सम्पादन – यज्ञ याग, देवार्चन, पितृश्राद्ध एवं अन्यान्य धार्मिक कृत्यो को पूर्ण करने के लिए नारी की धर्मपत्नी के रूप में अनिवार्यता है। पत्नी रहित पुरूषों के सब धार्मिक कृत्य व्यर्थ है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार **''पत्न्या बिना पुमानिज्याकर्म योग्यो न जायते''**[9]अर्थात पत्नी विहीन व्यक्ति किसी धार्मिक कृत्य का सम्पादन नहीं कर सकता।

अर्थोत्पादन–नारी को धर्मपत्नी के रूप में गृहलक्ष्मी नाम से अभिहित किया गया है। वैदिककाल से नारी अर्थोत्पादन में सहायक और अर्जित सम्पत्ति की संरक्षिका रही है।

सम्मानप्राप्ति–अनेक प्रकार से धर्मपत्नी अपने पति को मर्यादा और धर्मयुक्त जीवन व्यतीत करने में सहायिका सिद्व होती है। अपने पति को पाप कर्म से विरत करती है। स्कन्द पुराण का कथन है–**''संसार कल्मषात् त्रात्री कलत्रमिति सा तत''।**[10] अर्थात् कलत्र की परिभाषा यह है जो संसार के कल्मष से रक्षा करे। पत्नी युक्त पुरूष विश्वसनीय माना जाता है।

कामनियन्त्रण– गृहस्थ का उद्देश्य कामवृति को नियन्त्रित करना ही है। धर्मशास्त्र भी हमें धर्म से अनुमोदित काम सेवन की अनुमति देते है। उच्च नैतिक आदर्शो व सदाचार की प्रतिष्ठा हेतु व्यक्ति का सर्वतोभावेन मर्यादा में रहना अनिवार्य है। नारी रहित पुरूष के लिए ऐसा करना सर्वथा असम्भव है। एतदर्थ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश अनिवार्य है जो नारी बिना असम्भव है।

मोक्षप्राप्ति– भारतीय संस्कृति में सांसारिक निवृति और आध्यात्मिक प्रवृति का सुन्दर सामजस्य है। विवाह या पाणिग्रहण सांसारिक सुख का मर्यादापूर्वक विधान करके अनासक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। विषय सुख के उपरान्त ही इससे विरक्ति सम्भव है। पुरुष के समान नारी के लिए धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष की प्राप्ति हेतु विवाह कर्म आवश्यक है क्योंकि इस कर्म के उद्देश्य दोनो के लिए समान है। गृह्य सूत्र के अनुसार धर्म का सम्पादन पुत्रोत्पादन, यज्ञ निष्पादन, ब्रह्म–देव–ऋषि तर्पण आदि क्रियाओं में नर नारी समभाव से सहयोग करते है।[11] इस प्रकार नारी के महत्त्व को स्वीकार

करके ही उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु गृहस्थ आश्रम में नारी का स्थान अनिवार्य माना गया है। पाणिग्रहण संस्कार की विधि पर दृष्टिपात किया जाए तो वहाँ पर भी नारी की गरिमामयी उपस्थिति को प्रदर्शित किया गया है। वधू को वस्त्र दान के प्रंसग में वर निम्न मन्त्र का पाठ करता हुआ वधू को वस्त्र अर्पण करता है **''जरांगच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टी नामभिशस्ति पावा शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिञच पुत्राननुसंव्ययस्वाऽऽयुष्मतींद परिधत्स्व वासः''**[12] यहाँ पर वर स्वयं पहले वस्त्र न धारणकर भावी भार्या को सर्वप्रथम सम्मान देते हुए वस्त्र धारण करवाता है। इन वस्त्रों को देते हुए वर ईश्वर से प्रार्थना करता है कि यह वधू कभी वस्त्र से रहित न रहे तथा पूर्णायु का भोग करते हुए प्राण धारण करें। कन्यादान करते समय कन्या का पिता पुण्यार्जन भी करता है तथा भावी वर–वधू के कर्तव्यों का संकल्प भी इस अवसर पर होता है। वैखानस धर्मसूत्र के अनुसार –**''कन्याप्रदो वरगोत्र नाम शर्मान्तं तथैतामस्य सहधर्मय चारिणी भवतीति ब्राह्मे विवाहे धर्मप्रजापत्यर्थं ब्रह्मदेवर्षिपितृहप्यर्थं प्रजा सहत्त्व कर्मभ्यो ददामि इति उदकेन तां दद्यात्''**[13] अर्थात कन्या प्रदान कर्त्ता वर की सह धर्म चारिणी बनाने, धर्मार्जन, सन्तानोत्पादन यज्ञ सम्पादन तथा बह्म–देव–ऋषि पितरों की तृप्ति हेतु कन्यादान करता है। जैमिनी सूत्र में भी कहा गया है **''धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्येति''**[14] कहकर वर की प्रतिज्ञा दर्शायी गयी है कि वह धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति वधू के साथ करेगा तथा कभी इसका अतिक्रमण नहीं करेगा। वस्तुतः वर–वधू या नर नारी का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। कहा गया है–**''अमोऽहमस्मि सा त्वं त्वमस्यमोऽहं। सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथ्वी त्वम्''**।।[15] इस अथर्ववेद के मन्त्र में साम और ऋचा, द्यौ और पृथ्वी के समान नर नारी का सम्बन्ध बताया है। एक ओर यदि पुरुष को प्रधान माना गया है तो स्त्री को भी ''सम्राज्ञी भव'' कहकर गृहस्थ में उच्चपदवी प्रदान की गयी है। अथर्ववेद में ऋषि नववधू को आशीर्वचन कहते हैं

सम्राज्ञी स्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु।[16]

वैदिक साहित्य में गृहस्थ आश्रम के सन्दर्भ में पुरूष–स्त्री के सम्बन्ध को अविभाज्य बताया है। वैदिक ऋषि ऋग्वेद में नवयुगल को सम्बोधित करते हुए कहते है।

''इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुव्यश्नुतम्

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।।[17]

उपर्युक्त मन्त्र में नवयुगल को कभी भी वियुक्त न होने तथा अपने घर में ही संतति आदि से युक्त होकर आनन्दपूर्वक जीवन जीने की शुभकामनाएँ प्रदान की गयी है। इसी प्रकार जैसे चक्रवाक पक्षी युगल सदा संग रहते है वैसे ही नवयुगल रहें इस प्रकार की कामना अर्थवेद में की गयी है।

''इहेमविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती।

प्रजयैनो स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुयाम्।।[18]

सामाजिक जीवन में स्त्री को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में नारी को पुरुष की मित्र माना गया है। नारी पुरुष की पथप्रदर्शक भी कही गयी है। ऋग्वेद में ऋषि उद्बोधन करते हैं

''सूर्योदेवी मुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।।[19]

इस मन्त्र में उषा देवी जगत के प्रकाशक सूर्य की पथ प्रदर्शक के रूप में कही गयी है। इसी प्रकार पुरुष भी स्त्री का अनुगामी होता है। यहाँ पर पुरुष की अपेक्षा नारी की श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय जीवन पद्धति में चार आश्रम चरम लक्ष्य प्राप्ति के साधन है। समस्त आश्रमों में मुख्य गृहस्थ ही है और गृहस्थ की कल्पना बिना नारी के कर ही नहीं सकते। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा, चन्द्रमा की शीतलता, अग्नि का दाहकत्व इन सबमें सम्मिलित है उसी प्रकार गृहस्थ में नारी का अस्तित्व अपरिहार्य एवं गरिमापूर्ण है। शास्त्र के दृष्टिकोण से विचार करें तो नारी पुरुष की अर्द्धांगी ही नहीं है अपितु पुरुष से श्रेष्ठ अर्द्धांग है। शास्त्र के अनुसार अपने से श्रेष्ठ एवं उत्तम जन को अपने से वामांग में स्थान देने का विधान है। इसी शास्त्र के नियम को आधार बनाकर प्रत्येक युगल प्रतिमा में देवी अर्थात् स्त्री का स्थान देव अर्थात् पुरुष से वाम भाग में ही होता है। इसी प्रकार कुछ धर्मिक कृत्यों को छोड़कर पत्नी का स्थान भी पति के वाम भाग में ही होता है। इससे यह भावना और अधिक पुष्ट होती है कि गृहस्थ आश्रम में नारी की स्थिति पुरुष से श्रेष्ठतर होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद, रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बाविद्याभवन, 2016

2. ऋग्वेद– राम गोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बाविद्याभवन, 2016
3. पारस्कर गृह्यसूत्र, अनन्तराम गौड, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 1987
4. पारस्कर गृह्यसूत्र–डॉ. जगदीशचन्द्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 1991
5. बृहत्पाराशर स्मृति– माधवाचार्य, दि एशियाटिक सोसाइटि–1974
6. संस्कार प्रकाश – गीता प्रैस, गोरखपुर, 2016
7. मनुस्मृति– चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1993
8. मार्कण्डेय पुराण– गीता प्रैस, गोरखपुर 2013
9. याज्ञवल्क्य स्मृति– चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1998
10. विवाह पद्वति– गंगाधर शर्मा, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, 2002
11. स्कन्ध पुराण– गीता प्रैस, गोरखपुर 2015